प्रस्तुतकर्ता
डॉ. सीताराम बैरवा
एसोशिएट प्रोफेसर - राजनीति विज्ञान
राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
लालसोट, जिला दौसा, राजस्थान

भारतीय संविधान में स्वतंत्रता का अधिकार : एक सिंहावलोकन

सारांश

भारत में एकीकृत न्याय व्यवस्था है जिसके द्वारा मूल अधिकारों को पूर्ण संरक्षण प्राप्त है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय संविधान में वर्णित स्वतंत्रता के अधिकारों के वर्णन के साथ साथ इन पर लगे युक्तियुक्त प्रतिबंधों का भी सांगोपांग वर्णन किया गया है। प्रस्तुत पत्र में जिन अधिकारों की उपेक्षा की गई है उनका भी आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है। इसके साथ अंग्रेजी विधि और अमरीकन विधि के अन्तर के साथ साथ भारतीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार से लेकर इसकी अवमानना तक के विशेषाधिकारों का भी उल्लेख किया गया है। भारतीय प्रजातंत्र में स्वतंत्रता के अधिकारों से नागरिकों में बढ़ रहे सम्मान का भी वर्णन किया गया है। स्वतंत्रता के अधिकारों सम्बंधी संविधान संशोधन अधिनियमों का भी मूल्यांकन कर प्रासंगिक सुझाव भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : स्वतंत्रता, अधिकार, न्यायपालिका, प्रजातंत्र, क्षेत्राधिकार, संशोधन, संविधान आदि।

प्रस्तावना

स्वतंत्रता सम्बन्धी मौलिक अधिकार देकर भारतीय संविधान द्वारा व्यक्तियों एवं नागरिकों को भारत में एक समाजवादी समाज की स्थापना करने की इच्छा व्यक्त की गई। परन्तु इन पर अनेक प्रकार के प्रतिबंध लगे हुए हैं। स्वतंत्रता सम्बन्धी मौलिक अधिकारों में सिद्धांत एवं व्यवहार में अन्तर है। ऐसा लगता है कि इन्हें एक हाथ से लेकर दूसरे हाथ से छीनने का प्रयास किया गया है। मौलिक अधिकारों में आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों की अवहेलना सी की गई है। जबकि संविधान की प्रस्तावना में भारत में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय लाने का संकल्प प्रस्तुत किया गया है और फिर भी मौलिक अधिकारों में श्रम, आराम करने, सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित अधिकारों की उपेक्षा की गई है। मौलिक अधिकारों के द्वारा भारतीय नागरिक अपने जीवन का सर्वोच्चतम विकास कर सकता है। अधिकारों पर लगाये गये प्रतिबंधों से ज्ञात होता है कि सत्ताधारी दल विरोधी दल की स्वतंत्रताओं पर प्रतिबंध लगा सकता है। संसद राष्ट्रीय हित और प्रशानिक कुशलता के लिए अनुच्छेद १९ से २२ के स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकारों पर नियंत्रण की व्यवस्था कर सकती है। इस प्रकार अधिकार अर्थहीन से प्रतीत होने लगे हैं। अनुच्छेद ३२ के तहत सर्वोच्च न्यायालय मूल अधिकारों का संरक्षक है। इसको आरम्भिक और अपीलीय क्षेत्राधिकार प्राप्त है। बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और अधिकार पृच्छा जैसी रिट के माध्यम से मूल अधिकारों की सुरक्षा करती है। परन्तु न्याय व्यवस्था इतनी मंहगी है कि साधारण व्यक्ति इनका लाभ नहीं ले सकता।

मौलिक अधिकारों की व्यवस्थाएं निलम्बित कर दी जाती है जब देश में युद्ध या बाह्य आक्रमण जैसे आपात की स्थिति हो। मौलिक अधिकारों में स्वतंत्रता के अधिकार भारतीय लोकतंत्र के आधार स्तम्भ है। स्वतंत्रता के अधिकारों पर प्रतिबंधों के औचित्य का स्पष्टीकरण यह है कि

आजादी के समय देश साम्प्रदायिकता की आग में झुलस रहा था, देश का विभाजन हो चुका था। अतः व्यक्तियों की स्वतंत्रता को सीमित रखा जाना आवश्यक था।[1]

राज्य से की गई अत्यधिक प्रत्याशाओं का परिणामस्वरूप हीं मूल अधिकारों की आलोचनाएं होती है। वस्तुतः अन्यथा यह कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि मूल अधिकारों के कारण ही भारत का नागरिक लोकतांत्रिक स्वतंत्रताओं का उपभोग करने में स्वतंत्र हो सका है। शासन का कोई भी अंग मूल अधिकारों का उल्लंघन नहीं कर सकता। इनके द्वारा सभी को अपने विकास का समान अवसर प्राप्त हो सका है।[2]

भारतीय संविधान आजाद भारत में एक नये समाज की संरचना का संकल्प है। समाज के पिछड़े, शोषित, उपेक्षित, गरीबी और उत्पीड़न के शिकार लोगों की आर्थिक, सामाजिक उन्नति के साथ उनके हितों व अधिकारों की रक्षा के लिए अनेक प्रावधान किये गये हैं और इनको लागू करने के लिए अनेक संवैधानिक संस्थाओं का गठन किया गया परन्तु कालान्तर में ये संस्थाएं अपनी भूमिका का निर्वहन करने में असफल रही है। आज ये संस्थाएं राजनीतिज्ञों और नौकशाहों की पनाह स्थली बन गई है। ये संस्थाएँ संविधान की अवहेलना न करने के लांछन से सरकार को बचाने का प्रयास तो करती है परन्तु इनकी सिफारिशों को कभी गंभीरता से नहीं लिया जाता। जन प्रतिनिधि एवं सरकार अपनी प्रतिबद्धता दिखाए तो बेहते गणतंत्र विकसित हो सकता है।[3]

संविधान के प्रारम्भ में सम्पत्ति के अधिग्रहण, स्वामित्व व विक्रय का अधिकार सभी भारतीय नागरिकों को प्रदान किया गये थे। इस सम्बन्ध में अनुच्छेद ३१ की यह व्यवस्था थी कि कानून की सत्ता के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जाएगा। सम्पत्ति केवल सार्वजनिक हित में ही अधिग्रहित की जा सकती थी। ऐसा केवल कानून द्वारा ही किया जा सकता था तथा इस प्रकार अधिग्रहित सम्पत्ति के बदले नागरिकों को मुआवजा देना आवश्यक था अथवा उन्हें मुआवजा देने की कार्यविधि सम्बन्धी सूचना देना जरूरी था। अनुच्छेद ३१(२) ने उन परिस्थितियों को निरूपित किया जिसके अन्तर्गत राज्य व्यक्ति की सम्पत्ति का अधिग्रहण कर सकता था। संविधान के ४४वें संशोधन द्वारा जनता पार्टी की सरकार ने १९७८-७९ में संविधान से सम्पति का अधिकार हटा दिया दिया। संविधान के भाग १२ के अनुच्छेद ३००अ के रूप में एक नई व्यवस्था द्वारा इसे केवल एक कानूनी अधिकार के रूप में ही अंगीकार किया गया। इस अनुच्छेद का शीर्षक था-''वित्त, सम्पत्ति और मुकदमें।'' यह व्यवस्था इस बात की ताकीद करती है कि सिवाय कानून की सत्ता के ''किसी भी व्यक्ति को उसकी सम्पति से वंचित नहीं किया जाएगा। यह व्यवस्था किसी व्यक्ति को सम्पत्ति से वंचित करने के कार्यपालिका आदेशों के विरूद्ध तो सुरक्षा प्रदान करती है लेकिन यह सुरक्षा संसद या विधानमण्डल के किसी ऐसे कार्य पर प्रभावी नहीं होती। लगभग सभी व्यावहारिक दृष्टियों से इस सम्बन्ध में किसी भी न्यायिक पुनर्समीक्षा पर अब प्रतिबन्ध सा लग गया है। हमारा समाज मूलतः एक विषमतामूलक विविधता का समाज है। ऐसे समाज में सम्पत्ति के अधिकार ने केवल वर्गीय विशेषाधिकार बनाये रखने में ही सहायता प्रदान की है। ''कलक्टर ऑफ कस्टम्स बनाम सम्पथु चेट्टी'' मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि अनुच्छेद १९ के उपबन्धों के निर्वचन में अमरीकी संकल्पना का आंख मूंद कर अनुसरण नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद १९(२) में निर्बन्धन लगाने वाली किसी भी विधि की वैधता केवल युक्तियुक्तता पर ही निर्भर नहीं करती। निर्बन्धन युक्तियुक्त हो फिर भी विधि अवैध हो सकती है यदि निर्बन्धन सम्बन्धित खण्ड में दिये गये आधारों पर नहीं लगाया गया है। १६वाँ

संविधान संशोधन अधिनियम १९६३ के द्वारा अनुच्छेद १९ के खण्ड (२) में ''के हित में'' कोई के पहले ''भारत की प्रभुता एवं अखण्डता'' शब्द जोड़े गये। अनु. १९ के खण्ड (३) व (४) में इनके पहले ''या'' शब्द भी जोड़ा गया। यह संविधान की प्रस्तावना के अनुरूप है। जिसके अनुसार प्रभुता और अखण्डता की रक्षा संविधान का उद्देश्य है। यह ध्यान देने योग्य है कि भारत की प्रभुता और अखण्डता के आधार पर निर्बन्धनों की अनुमति है न कि राज्यों की प्रभुसत्ता व अखण्डता के आधार पर। राज्य की सुरक्षा : सभी कानूनी अधिकार विधि की देन है और विधि राज्य द्वारा लागू की जाती है। राज्य की सुरक्षा न होने पर अधिकारों की रक्षा नहीं हो सकती है। यदि व्यक्तियों के अधिकारों को लागू नहीं किया जा सकता यदि उनसे राज्य की सुरक्षा को खतरा पैदा होता हो। यू.एस. के एक मामलें में न्यायमूर्ति होम्स ने कहा था-''जब राष्ट्र युद्ध कर रहा हो तो बहुत सी बातें शांति के समय कही जा सकती है, उसके प्रयत्नों में ऐसी बाधक हो सकती है कि जब तक युद्ध हो रहा हो उनका कहना सहन नहीं किया जा सकता और कोई न्यायालय उन्हें संवैधानिक अधिकार द्वारा सुरक्षित नहीं मान सकता।''

१. विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध : प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम १९५१ द्वारा इसे जोड़ा गया। यह अनुच्छेद ५१ के अनुरूप है जिसमें यह निदेशात्मक सिद्धांत है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की उन्नति तथा राष्ट्रों के बीच न्याय व सम्मानपूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का प्रयास करेगा।

२. लोक व्यवस्था : इसे भी प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम १९५१ द्वारा जोड़ा गया। ''रमेश थापर बनाम मद्रास राज्य'' मामले में अपीलार्थी एक अंग्रेजी साप्ताहिक ''क्रॉस रोड'' जो साप्ताहिक बम्बई से प्रकाशित होता था, का मुद्रक, प्रशासक एवं सम्पादक था। मद्रास सार्वजनिक व्यवस्था अनुरक्षण अधिनियम, १९४९ के अन्तर्गत उक्त साप्ताहिक के मद्रास राज्य में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। अपीलार्थी ने अनुच्छेद ३२ के अन्तर्गत एक याचिका द्वारा मद्रास सरकार के आदेश तथा अधिनियम की संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी थी कि इससे उसके वाक्-स्वतंत्रता का उल्लंघन हुआ है और अधिनियम की धारा १९(१क) जिसके अन्तर्गत राज्य को सार्वजनिक सुरक्षा तथा सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए पत्रिका के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार प्राप्त है, असंवैधानिक है क्योंकि सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक व्यवस्था अनुच्छेद १९(२) के अन्तर्गत अनुज्ञात आधार नहीं है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने अपने बहुमत से निर्णय में यह कहा कि अधिनियम की धारा १९(१क) जो लोक सुरक्षा या लोक व्यवस्था रखने के लिए जर्नल के प्रवेश व प्रचलन को रोकने के लिए राज्य सरकार को प्राधिकृत करती है, असंवैधानिक है क्योंकि अनुच्छेद १९(१)(क) द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता पर निर्बन्धन केवल अनुच्छेद १९(२) में वर्णित आधारों पर ही लगाये जा सकते हैं। लोक सुरक्षा तथा लोक व्यवस्था अनुच्छेद १९(२) में वर्णित नहीं है। ''बिहार राज्य बनाम शैल बाला देवी'' में संग्राम नामक एक पुस्तिका में लेखक ने जनता से यह अपील की कि सब लोगों को संघर्ष में शामिल होकर हिंसा द्वारा क्रांति लानी चाहिए जिससे दमनकारियों का, जो मातृभूमि के लिए कलंक है, पूर्ण नाश हो सके। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि पुस्तिका को पढ़कर कोई भी विवेकशील व्यक्ति उससे प्रभावित नहीं हो सकता इसलिए इससे सार्वजनिक व्यवस्था को कोई खतरा नहीं हो सकता है। न्यायालय ने प्रकाशन के लिए अनुमति दे दी। परन्तु विश्व हिन्दु परिषद के नेता प्रवीण तोगड़िया के मंगलोर पर

प्रवेश पर कर्नाटक सरकार के आदेश को उच्च न्यायालय ने अनुचित बताया। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द करते हुए कहा कि किसी भी व्यक्ति को अपने भाषण अथवा आचरण से संविधान के मान्यता प्राप्त पंथ निरपेक्षता के ताने बाने को नष्ट करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। कानून व्यवस्था बनाये रखने वाले अधिकारियों को लगता है कि किसी व्यक्ति के भाषण या आचरण से साम्प्रदायिक तनाव या कटुता फैल सकती है तो ऐसी अप्रिय स्थिति को रोकने के लिए प्रतिबन्ध आवश्यक होता हैं।[४]

३. शिष्टाचार : सदाचार की सीमाओं के अन्तर्गत ही भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता उचित है। ब्रिटेन और अमरीका में भी वाक् स्वतंत्रता अधिकार है परन्तु अश्लील भाषण या प्रकाशन निषिद्ध है। परन्तु अश्लीलता की परख क्या है? अंग्रेजी विधि में इसकी परख 'आर. बनाम हिकलिन' वाद में दी गई जिसके अनुसार अश्लीलता की कसौटी इस बात का निर्णय करने में है कि क्या जिस वस्तु के विरूद्ध अश्लीलता का आरोप है वह इस योग्य है कि ऐसे मस्तिष्क के लोगों को भ्रष्ट कर सके जो इस प्रकार के अनैतिक प्रभाव को ग्रहण कर सकने योग्य है और जिनके हाथों ऐसा प्रकाशन पड़ने की संभावना है। अमरीकी विधि में अश्लीलता को इस प्रकार समझाया गया है-''उचित परख यह है कि क्या समकालीन सामुदायिक मानक के अनुसार पूरी विवादग्रस्त सामग्री पर विचार करने पर उसका प्रभावी विशय सामान्य व्यक्ति की रूचि को अपील करता है।''

इस प्रकार अंग्रेजी विधि और अमरीकन विधि दोनों में निम्न अन्तर है-

(१) हिकलिन परख के अनुसार केवल उस भाग पर न्यायालय विचार करेगा जिस पर अश्लीलता का आरोप है पर अमरीकी परख के अनुसार सारी सामग्री पर विचार करना होगा। जैसे किसी पुस्तक के अश्लील होने के आरोप में अंग्रेजी परख केवल उन पृष्ठों पर विचार कर निर्णय देगा जिस पर अश्लील होने का आरोप है जबकि अमरीकी परख के अनुसार सम्पूर्ण पुस्तक पर विचार करके तब उन पृष्ठों की अश्लीलता के बारे में कोई निर्णय देगा।

(२) अग्रेंजी परख के अनुसार निर्णय इस बात पर निर्भर होगा कि अश्लील सामग्री उन लोगों को भ्रष्ट कर सकती है या नहीं जिनके इस प्रकार की सामग्री से प्रभावित होने की अधिक संभावना है। अमरीकी परख में निर्णय इस बात पर निर्भर करेगा कि समकालीन सामुदायिक मानक के अनुसार एक सामान्य व्यक्ति के ऊंपर उसका क्या प्रभाव होगा। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अंग्रेजी परख के आधार पर आसानी से किसी चीज को अश्लील साबित किया जा सकता है।

भारत में ''रंजीत डी. उदेशी बनाम महाराष्ट्र'' में अपीलार्थी भारतीय दण्ड संहिता की धारा २९२ के अन्तर्गत अभियोजित किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने हिकलिन परख के आधार पर डी. एच. लारेंस द्वारा लिखित एक पुस्तक 'लेडी चेटरलेज लवर' को अश्लील घोषित कर दिया जबकि वही पुस्तक अमरीका व कनाड़ा व अमरीका में अश्लील नहीं मानी गई जिससे न्यायालय की काफी आलोचना हुई। ''समरेश बोस बनाम अमल मित्रा'' मामले में भी उच्चतम न्यायालय ने सम्प्रेषण किया कि एक अभद्र लेख अनिवार्यतः अश्लील नहीं होता। अभ्रदता से घृणा और प्रत्युतेजन व ऊब की भावना उत्पन्न होती है। परन्तु उसका प्रभाव उपन्यास के पाठक की नैतिकता को भ्रष्ट, दूषित या विकृत करना नहीं होता, जबकि अश्लीलता की प्रवृति ऐसे लोगों का चरित्र बिगाड़ने या भ्रष्ट करने की होती है जिनके मन इस प्रकार के प्रभाव के लिए खुले रहते हैं।

अनुच्छेद १९(२) के अन्तर्गत न्यायालय अवमानना सम्बन्धी विधि युक्ति-युक्त निर्बन्धन है। इसलिए भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगाने के बावजूद भी असंवैधानिक नहीं है। न्यायालय अवमान कई तरह से हो सकता है जैसे न्यायाधीशों का अपमान करना, उन पर आक्रमण करना, विचाराधीन कार्यवाही पर टिप्पणी करना जिससे निरपक्ष जांच में बाधा पड़ती हो, न्यायालय के अधिकारियों, पक्षों तथा गवाहों को रोकना, न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग तथा अन्य कोई ऐसा कार्य करना जिससे न्यायपालिका की बदनामी या मर्यादा भंग हो। बोलने की स्वतंत्रता के अधिकार के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठा कि क्या इसमें उत्तर देने का अधिकार भी शामिल है।

वाक् तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक मूल अधिकार है जिसे न्यायालय द्वारा प्रवर्तित किया जा सकता है फिर भी यह अधिकार अनिर्बन्धित नहीं है। ४२वें संविधान संशोधन अधिनियम १९७६ द्वारा जोड़े गये मूल कर्तव्य न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। भारतीय संविधान के परिसंघात्मक स्वरूप में एकता एवं अखण्डता कायम रखने का पूर्ण प्रयास किया है। इसी कारण अनुच्छेद ५ में केवल इकहरी नागरिकता का प्रावधान एवं अनुच्छेद 301 में पूरे भारत में व्यवसाय एवं व्यापार की स्वतंत्रता दी गई है। अनुच्छेद १९ के खण्ड (१) के उपखण्ड (घ) भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार प्रत्येक नागरिक को देता है। हेल्मेट की अनिवार्यता के सम्बन्ध में ''अजय कानू बनाम भारत संघ'' में मोटर यान अधिनियम का नियम ४९८ए संवैधानिक घोषित किया गया क्योंकि इसका उद्देश्य प्राणघातक दुर्घटना से ड्राइवर की रक्षा करना और सड़क पर अनावश्यक भीड़ और रूकावट न होने देना है।

अनुच्छेद १९(१)(क) द्वारा प्रदत वाक् तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में किसी भी प्रकार से अपनी राय व्यक्त करना शामिल है। यह अभिव्यक्ति मौखिक शब्दों द्वारा, लेख द्वारा, तस्वीरों द्वारा मुद्रण या अन्य किसी माध्यम द्वारा हो सकती है। टेलीफोन पर की गई बातचीत निःसंदेह इस अधिकार के अन्तर्गत आती है। इसलिए 'पिपुल्स यूनियन फोर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ' में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि टेलीफोन पर की गई बातचीत अनुच्छेद १९(१)(क) के अन्तर्गत मूल अधिकार है। इस पर निर्बन्धन अनुच्छेद १९ (२) में दिये गये आधारों पर ही लगाये जा सकते हैं। अन्य प्रकार के निर्बन्धन असंवैधानिक होंगे। टेलीग्राफ अधिनियम १८८५ की धारा ५ लोक आपात और लोक सुरक्षा के आधार पर टेलीफोन पर बातचीत को टेप करने की अनुज्ञा देती है फिर भी प्रक्रिया युक्तियुक्त और उचित होनी चाहिए। अनुच्छेद १९ के अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को ही प्राप्त है। कुछ मूल अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए हैं, चाहे वे नागरिक हो या गैर नागरिक परन्तु अनुच्छेद १९ में दिये गये सभी अधिकार केवल भारतीय नागरिकों के लिए हैं। गैर नागरिक इन अधिकारों का दावा नहीं कर सकते।

अनुच्छेद २० का कोई भी खण्ड तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि कोई अपराध न किया गया हो परन्तु अपराध शब्द की परिभाषा संविधान में नहीं दी गई है। इसलिए सामान्य खण्ड अधिनियम की धारा 3(37) में दी गई परिभाषा अन्तर्राष्ट्रीय विधि ही लागू होगी। इसके अन्तर्गत अपराध का अर्थ है कि कोई कार्य जो किसी विधि द्वारा जुर्माना, कारावास या मृत्यु के रूप में दण्डनीय किया गया।

संविधान के अनुच्छदे २० (३) में स्वयं अभिशंसन के विरूद्ध अधिकार दिया गया है जिसमें उपबन्ध है कि किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरूद्ध साक्षी होने

के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। प्रत्येक अधिकार का अपना आकार है परन्तु उनमें परस्पर अतिव्याप्ति हो सकती है। इसलिए यह मत सही नहीं है कि अनुच्छेद २१ में दी गई दैहिक स्वतंत्रता का अर्थ बहुत व्यापक है। इसमें वे अधिकार आ जाते हैं जिनमें से कुछ अनुच्छेद १९ में पृथक मूल अधिकारों के रूप में दिये गये हैं। हमारे संविधान में एकान्तता का अधिकार अभिव्यक्त रूप से शामिल नहीं किया गया फिर भी अनुच्छेद २१ में स्वतंत्रता शब्द इतना व्यापक है कि इसमें एकान्तता का अधिकार भी शामिल है।

''एम.पी. शर्मा बनाम सतीशचंद्र'' में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया गया था कोई कारण नहीं है कि यह सोच लिया जाये कि अनुच्छेद २०(३) का संरक्षण केवल न्यायालय में परीक्षण के समय जो कहा गया वहीं तक सीमित है। अनुच्छेद २०(३) में प्रयुक्त शब्दावाली साक्षी होना है साक्षी के रूप में उपस्थित होना नहीं है। इसलिए यह संरक्षण पहले लिए गये साक्ष्य पर भी लागू होता है। यह सम्प्रेषण सतीश शर्मा के केस में अनावश्यक था क्योंकि न्यायालय यह विनिश्चिय कर चुका था कि तलाशी के दौरान दस्तावेजों की अनिवार्य प्रस्तुति नहीं कही जा सकती।

सुझाव

स्वतंत्रता के अधिकारों की सुरक्षा किस प्रकार की जाये यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। पुलिस अभिरक्षा में लोगों के साथ सबसे अधिक अपराध होते हैं। अतः संविधान के अनुच्छेद २० के अन्तर्गत अभिरक्षा मामलों में अत्याचार रोकने के लिए निम्न निर्देश प्रतिपादित किये जा सकते हैं-

१. पुलिस द्वारा बंदी बनाते या पूछताछ करते समय पहचान पत्र और नाम के टेग पहने हुए होने चाहिए तथा उनकी विशिष्टियां रजिस्टर में नोट हो।

२. पुलिस ऑफिसर गिरफ्तारी का मीमो तैयार कर गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति के कुटुम्ब के सदस्य या क्षेत्र के सम्मानित व्यक्ति से उसे प्रमाणित कराएगा तथा बंदी के हस्ताक्षर के साथ उस पर समय और तिथि भी अंकित की जाऐगी।

३. बंदी बनाये गये व्यक्ति के निकटतम मित्र या रिश्तेदार को इसकी सूचना दी जानी चाहिए।

४. बंदी बनाने का समय, स्थान और अभिरक्षा के स्थान की सूचना जहाँ उसके सम्बंधी जिला के बाहर रहता हो, क्षेत्र के पुलिस स्टेशन के माध्यम से दी जाये।

५. बंदी बनाये गये व्यक्ति को अपनी गिरफ्तारी के बारे में किसी को जानकारी देने का अधिकार है।

६. जिस पुलिस ऑफिसर की अभिरक्षा में बंदी को रखा गया है उसकी विशिष्टियां तथा एवं गिरफ्तारी की सूचना दी गई उसका विवरण लिखे।

७. गिरफ्तारी के तुरन्त बाद उसकी चोटों का उल्लेख किया जाना चाहिए। निरीक्षण मीमों पर बंदी और पुलिस ऑफिसर दोनों के हस्ताक्षर कर एक प्रति बंदी को दी जानी चाहिए।

८. स्वास्थ्य सेवा के निदेशक द्वारा अनुमोदित प्रशिक्षित डॉक्टर से प्रत्येक ४८ घण्टें बाद बंदी का चिकित्सकीय परीक्षण कराया जाना चाहिए।

९. गिरफ्तारी मीमों सहित सभी दस्तावेजों की एक प्रतिलिपि क्षेत्र के मजिस्ट्रेट को अभिलेख के लिए भेजनी चाहिए।

१०. बंदी को अपने वकील से पूछताछ के लिए मिलने देना चाहिए।

११. गिरफ्तारी के १२ घण्टें के अन्दर जिला मुख्यालयों के नियंत्रण कक्ष में जानकारी दी जानी चाहिए।

अनुच्छेद ३५(क) में यह उपबंध है कि संसद अनुच्छेद १६(३), ३२(३), ३३ तथा ३४के अधीन विधि बना सकती है। अनुच्छेद ३५(ख) के अनुसार यदि इस प्रकार की कोई विधि संविधान लागू होने से पहले ही प्रर्वत है तो संसद द्वारा परिवर्तित करने या निरसित करने तक प्रर्वत में रहेगी। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संसद अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम १९५५ में परिवर्तन कर सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, १९५५ कर दिया तथा अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, १९८९ पारित कर चुकी है।[५]

व्यक्तियों को अपने मूल अधिकारों के छीने जाने का खतरा सबसे अधिक राज्य से होता है। तथा दूसरा खतरा व्यक्तियों से हैं। इसलिए व्यक्तियों को राज्य के विरूद्ध जो अधिकार प्राप्त है वे अनुच्छेद १४, १५(१), १६, १८(१), १९, २०, २१, २२, २५, २६, २७, २८, २९ तथा ३० में दिये गये हैं। व्यक्तियों को व्यक्तियों के विरूद्ध जो अधिकार प्राप्त है वे अनुच्छेद १५(२), १७, १८(२) से १८(४), २३ तथा २४ में उल्लेखित हैं। मूल अधिकार भूतलक्षी न होकर भविष्यलक्षी हैं। इसलिए ऐसा कानून जो संविधान प्रारम्भ होने की तिथि पर लागू था और मूल अधिकारों के विरूद्ध है, संविधान के प्रारम्भ की तिथि से शून्य होगा। संविधान के प्रारम्भ की तिथि से पहले किये गये सभी कार्यों के लिए वह कानून मान्य होगा। किसी भी अधिकार पर युक्तियुक्त निर्बन्धन न्यायालय की पुनर्विलोकन शक्ति को और अधिक बढ़ा देता है। लेकिन युक्तियुक्तता को जांचने की कोई कसौटी भी नहीं है और इसका निर्णय सदैव परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है। उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से कुछ सामान्य सिद्धांत स्थापित हुए हैं जिनके आधार पर युक्तियुक्तता की जांच जाती है-

१. युक्तियुक्तता पर अंतिम निर्णय देने की शक्ति न्यायालय की है न कि विधायिका की।

२. नगरिक अधिकारों पर लगाये गये निर्बन्धन न्यायपूर्ण और सामान्य जनता के हित में होने चाहिए। वैयक्तिक हित और सामाजिक हितों में सांमजस्य का प्रयास होना चाहिए।

३. युक्तियुक्तता का कोई सामान्य आधार नहीं हो सकता। प्रत्येक मामले की परिस्थितियों और तथ्यों पर वह निर्भर करेगा। यह मानदण्ड उस अधिकार की प्रकृति, बुराई की मात्रा, उसे दूर करने की अनिवार्यता, निर्बन्धन लगाने के अनुपात में भिन्नता और समकालीन परिस्थितियों के अनुकूल बदलता रहता है।[६]

४. लगाये जा रहे निर्बन्धनों को मौलिक विधि और प्रक्रिया विधि दोनों दृष्टिकोण से युक्तिपूर्ण होना आवश्यक है।

५. राज्य के नीति निदेशक तत्वों में निहित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए लगाये गये निर्बन्धन युक्तियुक्त माने जा सकते हैं।

६. जब न्यायालय किसी निर्बन्धन की युक्तियुक्तता पर विचार करे तो उनका दृश्टिकोण वस्तुनिष्ठ होना चाहिए न कि व्यक्तिनिष्ठ।

७. अनुच्छेद १९(१) में दिये गये अधिकारों पर लगाये गये निर्बन्धन केवल अनुच्छेद १९(२) से १९(६) तक के वर्णित आधारों पर ही लगाये जा सकते हैं। किसी अन्य आधार पर लगाये गये निर्बन्धन असंवैधानिक होंगे।

८. न्यायालय कानून की युक्तियुक्तता का निर्धारण नहीं कर सकते। उन्हें केवल यह देखना है कि नागरिक अधिकारों पर लगाये गये निर्बन्धन युक्तियुक्त है या नहीं है।

९. निर्बन्धन निशेधात्मक भी हो सकते हैं। कुछ विशेश मामलों में नागरिकों के पूर्ण अधिकार पर रोक लगाने के निर्बन्धन भी युक्तियुक्त हो सकते हैं। खतरनाक व्यापारों और उत्पादन पर रोक लगाना जैसे शराब, नशीले पौधे उगाना, औरतों का क्रय विक्रय करना आदि युक्तियुक्त निर्बन्धन है। प्रत्येक नागरिक को विधिपूर्ण वाणिज्य का पूरा अधिकार है। लेकिन इस अधिकार का प्रयोग उसे युक्तियुक्त निर्बन्धनों के अधीन ही करना होगा।

स्वयं गांधीजी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर मुक्त बाजार व्यवस्था को प्रश्रेय देने के खिलाफ थे। दूसरी ओर वह लोगों के जीवन और अर्थव्यवस्था पर राज्य के पूर्ण नियंत्रण के भी विरोधी थे। पश्चिमी समाज का मुक्त व्यक्ति एक आदर्श और मानवीय समाज के निर्माण में बाधक है। गांधीवादी दृष्टि में व्यक्ति का व्यवहार आत्मनियमन से अनुशासित है। मुक्ति का संदर्भ आध्यात्मिक है। आत्मानुशासित व्यक्ति सामाजिक सुधार में भी योगदान देता है। गांधी का व्यक्तिवाद जिसमें व्यक्ति सत्य का अन्वेशक है, उसे अहिंसक मार्ग पर ले जाता है और भौतिक आवश्यकताओं के लिए पड़ौसी के प्रति इमानदार बनाता है जबकि पश्चिमी व्यक्तिवाद अपनी स्वतंत्रता के लिए शक्ति संघर्श है।[७]

जनवरी २००८ में उच्चतम न्यायालय ने तमिलनाडु में पोंगल के अवसर पर होने वाली ४०० वर्श पुरानी जलीकट्टू (बैलों की लड़ाई) को पहले तो पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया था परन्तु तमिलनाडु सरकार की पुनरीक्षण याचिका पर विचार करने के बाद इस भार्त के साथ इसे आयोजित करने की अनुमति दी कि कलेक्टर को यह सुनिश्चित करना होगा कि पशुओं के किसी भी तरह का क्रूरतापूर्ण व्यवहार न हो।

फरवरी २००८ में विधि आयोग ने २०४वीं रिपोर्ट में लड़को में विवाह हेतु न्यूनतम आयु २१ वर्श से घटाकर १८ वर्श करने का सुझाव दिया है। आयोग का मानना है कि लड़की व लड़के की उम्र में शादी के लिए अन्तर रखने का कोई तार्किक आधार नहीं है। इसी प्रकार हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम के मौजूदा कानूनी प्रावधानों में किसी सम्पत्ति धारक की विधवा के अतिरिक्त पुत्र, पुत्री व माँ को ही प्राथमिकता वाले उत्तराधिकार में भामिल किया गया है तथा पिता का नाम दूसरी श्रेणी के उत्तराधिकार में शामिल किया गया है। इनमें संशोधन करने का सुझाव दिया है कि बिना वसीयत लिखे जिन संतानों की मृत्यु हो जाती है, उनकी सम्पत्ति में से पिता को भी हिस्सा दिया जाना चाहिए। अप्रेल २००८ में उच्चतम न्यायालय ने ऋण वसूली के एक मामले में फैसला दिया कि सम्पत्ति का अधिकार भले ही मूल अधिकार नहीं है परन्तु मानवाधिकार से जुड़ा होने से अभी भी संवैधानिक अधिकार है और कानूनी तौर पर जब तक अनिवार्य न हो तब तक किसी व्यक्ति को इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।[८]

मानव अधिकारों के प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण के ही अनुसार महाभारत में अधिकार को कर्तव्य के साथ गुँथा हुआ मानते हुए कहा गया है कि जो मनुष्य स्वयं जीवित रहना चाहता है। वह दूसरों के प्राण कैसे ले सकता है। अपने लिए जो सुविधा मनुश्य चाहता है, वही दूसरों के लिए सुलभ कराने की बात उसे सोचनी चाहिए। आज संविधान और अधिकारों के संदर्भ में सबसे ज्यादा खौफनाक समस्या विश्वास के संकट की है। विभिन्न वर्गों अगड़े और पिछड़े तथा अति पिछड़े के बीच अविश्वास की खाई गहरी होती जा रही है। इससे कहीं अधिक भयावह परिणाम वाली प्रकृति का उदय संस्थागत मूल्यों के प्रति अविश्वास के कारण हो रहा है। विधि आयोग की चेतावनी कि राश्ट्र अपने सांसदों, कार्यपालिका के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर सकता है परन्तु जिस दिन वह

न्यायालय में अविश्वास व्यक्त करने लगा उस दिन देश का अधःपतन अवश्यम्भावी हो जायेगा। मूल अधिकारों के संदर्भ में न्यायपालिका की सक्रियता ही संरक्षण का आधार है।[९]

संसद ने जनप्रतिनिधित्व (संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम २०१३ जिसको राश्ट्रपति ने २४ सितम्बर २०१३ को मंजूरी प्रदान की। इसमें जनप्रतिनिधत्व कानून २०१३ के खण्ड ६२ में किये गये संशोधन के अनुसार हिरासत में होने के बावजूद कोई व्यक्ति मतदाता बना रहेगा क्योंकि उसके मतदान के अधिकार को अस्थायी रूप से स्थगित किया गया है। अर्थात् जेल में बंद होने के बावजूद चुनाव लड़ने तथा अपील के लम्बित होने के दौरान सांसदों एवं विधायकों की सदस्यता बरकरार रखने की अनुमति देने का प्रावधान है लेकिन इस दौरान उन्हें मतदान और वेतन हासिल करने का अधिकार नहीं रहेगा। अगस्त २०१४ को केन्द्रीय मंत्रीमण्डल ने किशोर न्याय (देखभाल और बाल संरक्षण) अधिनियम २००० में बदलाव कर निश्चित किया है कि १६ वर्श से अधिक और १८ वर्श से कम आयु का कोई किशोर यदि गंभीर अपराध करता है तो किशोर न्याय बोर्ड (जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड) तय करेगा कि उस पर वयस्कों की तरह नियमित अदालती मुकदमा चले या उसे सुधार गृह भेजा जाये।[१०]

अक्टूबर २०१५ में भारतीय धर्म निरपेक्षता में मौजूद विभिन्न धर्मों की पृथक नागरिक संहिता गोमांस और दादरी प्रकरण को लेकर देश में कोहराम मचा है। यह असमान सिविल संहिता समानता के मौलिक अधिकार के विरूद्ध के है। मौलिक अधिकार हमें पूरी स्वतंत्रता के साथ जीने का हक देते हैं इसलिए बीफ-पोर्क (गाय और शुअर का मांस) खाना या मुस्लिमों के विवाह कानून जो पूर्णतः पुरूषों के पक्ष में हैं, समानता के सिद्धांत के लिए विरोधाभास है। हमें एक राष्ट्र के रूप में एक समान नागरिक संहिता की तरफ बढ़ना चाहिए। नीति निदेशक तत्व के अनुच्छेद ४८ के गौ संरक्षण कानून एवं इस्लामी कानून पर विचार करने की आवश्यकता है। सभी राजनीतिक दल और धर्म प्रमुख धर्म आधारित कानून को हटाने का निर्णय करें।

हिन्दुस्तान में आज न केवल व्यक्ति ही अपनी स्वतंत्रता के अधिकारों को प्राप्त करने एवं बनाये रखने के लिए संघर्षरत है बल्कि शासन के तीनों अंग अपनी-अपनी स्वतंत्रता एवं सम्प्रभुता की रक्षा के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। भारतीय न्यायपालिका एवं व्यवस्थापिका द्वारा अपनी सम्प्रभुता के लिए जो संघर्ष हुआ उसका उल्लेख संदर्भित विषय होने के कारण किया जाना उचित है। संसद द्वारा २० राज्यों की विधायिकाओं की अनुमति के पश्चात दो तिहाई बहुमत से ९९वाँ संविधान संशोधन अधिनियम २०१४ बनाया। इसमें जजों की नियुक्ति के लिए कालेजियम की जगह राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) बनाया गया था परन्तु उच्चतम न्यायालय की छ सदस्यीय पीठ ने इसे असंवैधानिक करार दिया। न्यायालय का तर्क है कि यह संविधान के मूलभूत ढांचे के खिलाफ है क्योंकि इसमें प्रतिष्ठित शब्द का कोई अर्थ नहीं है और तीन गैर न्यायिक सदस्यों की न्यायापालिका में घुसपैठ द्वारा सरकार न्यायपालिका का भी राजनीतिकरण करना चाहती है।[११]

न्यायालय के फैसले के संदर्भ में संविधान विशेषज्ञ सुभाष कश्यप का मानना है कि न्यायालय को संविधान बनाने की भाक्ति नहीं है तथा उसे संसद के अधिकारों में हस्तक्षेप करने का भी कोई अधिकार नहीं है।

संदर्भ सूची

1. सिंह, बी. पी., भारतीय भासन एवं राजनीति, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२, पृ. ६०
2. जोशी, आर. पी., भारतीय सरकार एवं राजनीति, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, २००७, पृ. ८३
3. सम्पदकीय, दैनिक भास्कर, ''नये समाज की संरचना का संकल्प'' उदयपुर, दिनांक २८ जनवरी २००८, पृ. ६
4. ए. आई. आर. १२४, सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, १९५० तथा ए. आई. आर. २०८१, 'कर्नाटक राज्य बनाम प्रवीण भाई तोगड़िया' सुप्रीम कोर्ट, नई दिल्ली, २००४
5. पाण्डेय, जी. एस., ''भारत का संविधान'' यूनिवर्सिटी बुक हाऊस प्रा. लि., जयपुर, २००५, पृ. २६१
6. सिविल सर्विसेज क्रॉनिकल, सामयिक लेख-''युक्तियुक्त निर्बन्धन'' क्रॉनिकल बुक्स, नई दिल्ली, जनवरी २०१३, पृ. ११
7. शोधार्थी, लोकनीति, विकासशील समाज अध्ययन पीठ, नई दिल्ली, मार्च, २००८ अंक ७, पृ. ७, ९
8. अन्तर्राष्ट्रीय क्रोनोलोजी, पी.एम.सी. पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा, मार्च २००८, पृ. ७-१२
9. राज-यष्टि, क्वार्टली जर्नल ऑफ राजस्थान पालिटिकल साइंस एशोसियशन, वॉ. द्वितीय, जनवरी २००९, पृ. २६ एवं ३७
10. एकलव्य सम-सामयिकी, आधार पब्लिकेसन, भरतपुर, नवम्बर २०१३, पृ. ७
11. लोढ़ा, आर.एम., लेख- ''फेल नहीं हुई है कॉलेजियम प्रणाली'' राजस्थान पत्रिका, जयपुर, दिनांक १७.१०.२०१५, पृ. सम्पादकीय